REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249.894X
VOLUME . 7 | ISSUE . 10 | JULY . 2018

"साहित्यिक मूल्य एवं बाज़ार वाद-महासमर की पृष्ठभूमि में –विश्लेषण"

मंजू अरोरा
अनुसंधित्सु-कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाडा, पंजाब.

सारांश (ABSTRACT):

वर्तमान उपभोक्ता संस्कृति के वर्तमान परिदृश्य में 'बाजारवाद' सबसे अधिक प्रचलित शब्द है | समाज के प्रत्येक चरण में दिखता हुआ, भरमाता हुआ और आकर्षित करता हुआ, हर सामान-चाहे वह वस्तु हो, व्यक्ति हो, भाव हो, बाज़ार के मध्य, जीवन का अनिवार्य रूप और आकार ले चुका है | हर वस्तु, हर बात, हर स्थिति आज के सन्दर्भों में बाज़ार में विक्रय के लिए तैयार विज्ञप्ति है | जीवन की आवश्यकताएं हों या मनोरंजन, मेले हों या आनंद-उत्सव कुछ भी ऐसा बाकी नहीं रहा, जो बाज़ार में आकर्षक रूपों में लुभाता सा उपलब्ध नहीं है | ई-नेट की सामयिक दुनिया में लुभाते से विज्ञापन किसी भी वस्तु को विक्रय योग्य बना देने की कुशलता से परिपूर्ण हैं | इसी सन्दर्भ के चलते आज साहित्य भी बाज़ार के इस उपभोक्तावादी संस्कार से अछूता नहीं रह पाया | जीवन की प्रारंभिक शैशव की पाठय-पुस्तकों से शुरू होती हुई, पाठन सामग्री परिपक्व पाठकों तक पहुँचते हुए आज बाज़ार का ही एक हिस्सा बन गयी है | पाठकों के बिना साहित्य का कोई मूल्य नहीं है और जिस साहित्य को पाठक तक पहुँचाना है, फिर उसकी पहुँच भी कैसे बाज़ार की मानसिकता से प्रथक रह सकती है | उसे भी तो बाज़ार के प्रतियोगी समाज से मुकाबला करने के लिए प्रस्तुतिकरण के मामले में बीस ही होना होगा न ? तो बाजारीकरण में साहित्य भी कहीं पीछे नही रह गया | वही बिक रहा है-जो दिख रहा है, जो भरमा रहा है, आकर्षित कर रहा है | इसके लिए साहित्य का, चाहे सांस्कृतिक रूप से कितना ही अवमूल्यन क्यूँ न हो जाता हो |

बीज शब्द: Key Words: बाजारवाद, बाजारीकरण, प्रतियोगिता, आकर्षण, मूल्यपरक, मानसिकता, वस्तु-विनिमय, क्रय-विक्रय, विज्ञापन, संचार व्यवस्था, सोशल-मीडिया, वैश्वीकरण, मूल्याङ्कन |

भूमिका: Introduction:

जीवन की कुछ अनिवार्य जरूरतों के रहते समाज एवं व्यक्ति एकदूजे पर परस्पर आश्रित रहते हैं और इसमें सक्रिय कार्य करता है बाज़ार | बिना बाज़ार के वस्तु-विनिमय का आदान-प्रदान और विचार, आधार रहित सा हो जाता है | आज समस्त वस्तुएं, चाहे वह किसी भी क्षेत्र की हों बिना बाज़ार में उपस्थित हुए विक्रय की कल्पना से परे हैं | आज बाज़ार की अनिवार्यता प्रमुख हो चली है | कुछ भी हो, कैसा भी हो, अपनी लाग-लपेट के साथ, वह बाज़ार में उपलब्ध है | संस्कृति और मनोविज्ञान से सम्बंधित विषय भी बाज़ार से सन्नद्ध हो चले हैं | ऐसे में साहित्य को भी बाज़ार से अलग कर के समझना थोडा बेमानी और नामुमकिन सा प्रतीत होता है | बाज़ार है, और है बाजारी-प्रतियोगिता का काल, तो यह समझना मुश्किल नहीं कि जो भी चाहिए, बाज़ार में मिलेगा | और उसकी उपयोगिता को, उपादेयता के मानदंडो पर इस प्रकार प्रस्तुत और विज्ञापित किया जायेगा कि खरीदार उससे आकर्षित हुए बिना न रह सकेगा, और अंतत: वस्तु को खरीद लेगा | इसी प्रकार साहित्य को भी आज आकर्षक वस्तु के रूप में

बेचा जाता है और पाठक उसे लेने को उद्यत हो जाता है | चूँकि समाज बदलता रहता है, उसकी आवश्यकताएं और मान्यताएं भी बदलती रहती हैं, तो समाज का दर्पण कहलाने वाला साहित्य उससे अछूता कैसे रह पायेगा, अत: साहित्य भी निरंतर प्रभवित होता हुआ बदलता रहता है | कह सकते हैं कि वह मत या विचारधारा जो मुनाफा केन्द्रित तंत्र को स्थापित करने वाली है , जिसमे हर वस्तु या विचार को बिकाऊ बना देने की योग्यता हो, जिसमे जीवन से सम्बंधित हर वस्तु का मूल्याङ्कन केवल व्यक्तिगत लाभ या मुनाफे की दृष्टि से ही किया जाता हो ; उसे बाजारवाद कहते हैं |

विश्लेषण: Explanation:

हमारे जीवन में, और साहित्य में बाज़ार की अहमियत कोई नवीन विचार नहीं है | प्राचीन काल से बाज़ार-शब्द हमारे मानस से, हमारे जीवन से, जुडा है | कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मीरा आदि कई संत कवियों ने भी बाज़ार की उपस्थिति अपने काव्य द्वारा साहित्य में दर्ज की है| हमारी आवश्यकताओं के लिए जैसे बाज़ार की आदान-प्रदान क्रियाओं का होना आवश्यक है, वैसे ही मेलों आनंद उत्सव आदि के लिए भी बाज़ार हमारे जीवन से जुडा रहा है | सामाजिक जीवन में वस्तु-विनिमय के द्वारा सुख-दुःख का आदान-प्रदान भी बाज़ार के माध्यम से ही होता रहा है | कबीर दास तो अपनी रचनाओं में बाज़ार में ही खड़े होकर सबकी खैर पूछते हैं, उन्हें जो सन्देश देना है , बाज़ार में ही देना है, बाज़ार के खिलाफ भी और उसके अनुसार भी, बात करने की उनमे ताक़त भी है और नैतिक आधार भी :-

"कबीरा खड़ा बाज़ार में सबकी मांगे खैर,
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर||"
एवं
"कबीरा खड़ा बाज़ार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर फूंके आपनो,चले हमारे साथ||"[१]

इस प्रकार के कितने ही उदाहरण हैं जो बाज़ार की महिमा का बखान करते हुए उसकी उपयोगिता और अनिवार्यता के द्योतक हैं | वास्तव में बाज़ार की मानसिकता का आवरण प्रत्येक वस्तु को इतना आकर्षक रूप प्रदान कर देता है कि उसका प्रस्तुतिकरण ही खरीदार को उद्वेलित कर देता है और वह वस्तु को खरीदने की चाह करते हुए उसे क्रय कर लेता है | सोशल मीडिया और ईकीसवी सदी का समय आधुनिक तकनीक से युक्त है इस बात ने भी बाज़ार को बहुत बढ़ावा दिया है | हमारी मानवीय संवेदना को वैश्वीकरण की चमकीली दुनिया ने ग्रहण लगा दिया है | उपभोक्तावाद की अंधी दौड़ ने आपसी प्रेम और सद्भावना की जड़ें कमजोर कर दी हैं | जिस संसार में आज हम रह रहे हैं उसमे उपभोक्तावाद हावी है | वास्तविकता तो यह है कि कोई भी समाज इस विषय में तार्किक चर्चा न करते हुए सिर्फ इसमें डूबता जा रहा है | सत्य तो यही है कि उपभोग और उत्पाद बाजारवाद का अभिन्न अंग है | आज यह शब्द अर्थशास्त्र की सीमा से निकल के आम बोलचाल की भाषा में समिल्लित हो चुके हैं | इस सब के लिए विज्ञापन ने बहुत बडी भूमिका निभाई है | छल-छद्म के आवरण में आवश्यकताएं सृजित कर के प्रत्येक वस्तु को बाज़ार में बढ़ावा दिया जाता है | स्वयं को समृद्ध दिखाने की होड़ ने उद्पादनों के बीच जानलेवा प्रतियोगिता शुरू कर दी है | नतीजा यह हुआ कि जीवन का कोई क्षेत्र प्रतियोगिता से अछूता नही रह गया| ऐसे में साहित्य भी बाज़ार की जरूरत के अनुसार लिखा, छापा,पढ़ा और बेचा जाने लगा है | किन्तु किस साहित्य को शुद्ध सांस्कृतिक और लोक कल्याणकारी लेखन की परिधि में रखा जाना चाहिए इस पर विचार करने की अपेक्षा, बिकने के मानदंडो पर खरे उतरने वाले साहित्य को तरजीह दी जाने लगी | अच्छे साहित्य की बिक्री कितनी कम है, यह बाज़ार के आंकड़े बताते हैं |यह आज की एक कडवी सच्चाई है | मुनाफा कमाने की होड़ ने प्रकाशकों के भी मूल्यों को हिला दिया है | यह सत्य है कि कुछेक लेखक अपनी सांस्क्रतिक शुद्धता को बरकरार रखे हुए हैं किन्तु अधिकांश मठाधीश

प्रकाशन-संसथान, विशिष्ठ बिकाऊ लेखकों की रचनाओं को ही छाप रहे हैं | फूहड़ और सनसनीखेज समाचार-साहित्य आज चलन में है | इसलिए प्रबुद्ध रचनाये और रचनाकार प्रसांगिक होते से प्रतीत हो रहें हैं | राज्य हिंदी-संस्थानों को उचित समय पर अनुदान प्राप्त नहीं होता तो वह भी बिकने की भेड़चाल में सम्मिलित होने को बाध्य हो जाता हैं |

आज कोई भी वस्तु चाहिए, ई-नेट पर जाईये और मिनटों-सेकंडों में वस्तु आपकी अँगुलियों की पकड़ में और आदेश देते ही कुछ समय के अन्तराल में आपके निवास पर पहुँच जाती है | दरअसल ये सब हो रहा है उस मानसिकता के तहत जो आज हर शह को बिकाऊ बना कर पेश करने और विज्ञापित करने में बढ-चढ कर लगी है | वास्तव में बाज़ार की अहमियत और उपयोगिता है ही ऐसी | हाँ ये भी कह सकते हैं, कि बाज़ार ने बहुत लाभ भी पहुंचाएं है, हर चीज़ बिकाऊ बन गयी है, आसानी से उपलब्ध है , क्योंकि नई अर्थव्यवस्था ने सब सामानों को आकर्षक और सुलभ भी तो बनाया है | बाज़ार के चलते कितने ही गरीब मजदूरों को रोजगार भी मिला है | यह सब होने के उपरांत भी भूलें नही कि मुख्य मुद्दा साहित्य का है और बाजारवाद की मानसिक नकारात्मकता ने साहित्य को बहुत चोट पहुंचाई है |

डॉ.नरेंद्र कोहली कृत महासमर में एक उद्धरण में दुर्योधन अपने लाव-लश्कर के साथ विहार करने द्वैत वन में जाने का आयोजन करते हैं | इस अवसर पर दुर्योधन-पत्नी काशिका एवं कर्ण-पत्नी वृषाली अपने प्रदर्शन-प्रियता के स्त्रिओचित गुण के रहते वस्त्राभूष्ण की सार-संभाल करती हैं | और तो और साथ ही पर्ण की व्यवस्था भी करना चाहती हैं जिससे श्रेष्ठी जन तथा व्यापारी अपने पूरे साज-सामान के साथ यात्रा में साथ रहें | जिससे यदि वहां किसी वस्तु की आवशयकता हो तो उसे त्वरित क्रय किया जा सके| बाज़ार की कितनी उपयोगिता है | यह मानव स्वभाव के अनुसार अपने हर रूप में उसकी जीवन चर्या में हरदम उपस्थित रहता है | दुर्योधन जगत श्रेष्ठी को हाट की व्यवस्था के लिए आदेश देते हुए कहता है, "रानियाँ तो बहुमूल्य वस्त्राभूष्ण क्रय करेंगी ...किन्तु साधारण सैनिक तो इतनी बहुमूल्य वस्तुएं क्रय नही कर पाएंगे.. अत: कुछ साधारण वस्त्रों के भी हट्ट हों .. कुछ खान पान की व्यवस्था ...|"[२] तो कितना जरूरी है बाज़ार !

बाज़ार की उपयोगिता और बदलते परिदृश्यों में व्यक्ति प्रत्येक चीज़ में लाभ देखने का आदी होता जा रहा है | इसी मानसिकता ने बाजार को मनुष्य की कमजोरी पकड़ा दी है | जो भी वस्तु, चाहे वह जरुरी है, या नही, उसे इतने आकर्षक ढंग से शब्दों के और रूप-रंगों के आवरण में लपेट कर प्रस्तुत किया जाता है कि बच्चे तक उसे खरीदने की और उद्वेलित हो जाते हैं | दिखावटी और उत्तेजित करते विज्ञापन आज की बदलती मानसिकता को पकड़ कर, परिवर्तित होते मूल्यों के अनुसार, उसके विचार-व्यवहार को भी बदलते जाते हैं | ऐसे में सुसंस्कृत-सभ्य और मर्यादित साहित्य का लोप होता जाना स्वाभाविक है | तेज़ चलती जिंदगी न तो मनुष्य को ठहरने का समय देती है न सोचने-विचारने का | ऐसे में परिवर्तित होते बहाव में व्यक्ति बिना सोचे बहता जाता है | उदाहरण के लिए बाजारवाद की मानसिकता के चलते सिनेमायी गीतों की बात करते हैं | एक समय था जब सिनेमा के गीत साहित्य की उत्कृष्ट कृतियाँ होते थे ..... "दिन जो पखेरू होते, पिंजरे में मैं रख लेता | पालता उनको जतन से , मोती के दाने देता | सीने से रहता लगाये ||"[३] अब आज का व्यवसायी होता सिनेमा-करण देखें .. "सुबह सवेरे उठ के मैंने मेकअप कर लिया, अपने सैयां जी से आज मैंने ब्रेक-अप कर लिया |"[४] अथवा "बेबी को बेस पसंद है |"[५] आदि | कहाँ गया वो साहित्य जिसके चलते सिनेमा अपनी मर्यादा और संस्कृति का संवाहक बना हुआ था | समय बदलता है, यह सत्य तथ्य है ! किन्तु मर्यादाएं भी बदलती है, और वो भी इस सीमा तक | थोड़ा आश्चर्य होता है | हमने अपने साहित्य का क्या हाल कर दिया है ! लचर साहित्य ने हमारी बुनियादी साहित्य प्रियता को और उत्कृष्ट शैली को कहीं दबा कर रख दिया है | बाजारवाद ने आज की नौजवान पीढ़ी को जैसे बताने ही नहीं दिया कि किस तरह का साहित्य उन्हें विरासत में मिला है | तेज़ रफ़्तार जिंदगी में ठहर कर, पुरानी कथा, कहानी, पौराणिक कथानक आदि को देखने पढने समझने की जैसे न रूचि है न समय | ऐसे माहौल में फिर क्यों नहीं होगा, साहित्य प्रभावित ?

मानव समाज के आपसी तालमेल में एकदूजे पर निर्भरता ने वस्तु आदान-प्रदान की प्राणाली को बाज़ार का रूप दिया था, और समाज, आज भावनाओं को भी बाज़ार में ले आया है | समाज के लिए क्या कल्याणकारी है, क्या नही, इस पर विचार के विपरीत- किस वस्तु से अधिक फायदा या लाभ है ,उसे अधिक तरजीह दी जाती है |

डॉ नरेंद्र कोहली कृत महासमर का एक प्रकरण है | युधिष्ठिर युवराज नियुक्त हो चुके हैं | सभा में एक घटना पर विचार होता है | घटना यूँ है कि धूत गृह में दो व्यक्ति किसी बात पर लड़ पड़ते हैं और अपशब्दों के उपरांत अंतत: हाथापाई पर उतर आतें हैं, धूत गृह में बहुत सी वस्तुएं टूट जाती है, लोगों के सर फूटते हैं, बाहर आ कर बाजार हाट लूटते हैं , सारा हाट बंद हो जाता है और त्रास फ़ैल जाता है | राजसभा में विचार के लिए यह बात आती है | लूट लिए गये व्यापारी चाहते हैं कि दोषियों को सार्वजनिक रूप से दंड दिया जाये और इस तरह के आंतककारी प्रभाव से बाज़ार को मुक्त करने के लिए सुरक्षा व्यवस्था हो | युधिष्ठिर इसे कई धरातल पर स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "दोनों व्यक्ति मदिरापान के बाद ही धूत क्रीडा में सलंग्न हुए थे | मदिरापान और धूत क्रीडा का राज्य की और से निषेध नही है, पर शांति भंग का निषेध है | इसलिए उन लोगों को बंदी बना कर दंड दिया जाये | ...दूसरी और वो व्यापारी हैं, उनकी क्षतिपूर्ति राज्य की और से हो ..क्योंकि राज्य उनकी सुरक्षा के लिए, उनसे 'कर' लेता है |. धूत गृह और मदिरालय राज्य की अनुमति से चल रहें हैं... ये प्रजा के आकर्षण का केंद्र हैं , पर यह भी जानना होगा कि मदिरा पीकर मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है, अत: उसकी दुर्बुद्धि उससे अनेक अनर्थ कराती है | धूत उसमें लोभ जगाता है | लोभ से उसका विवेक पंगु हो जाता है | ऐसे में जो व्यक्ति मदिरापान और धूत क्रीडा में सलंग्न होगा- वह अपनी सद्वृतियों को नष्ट कर हीन वृतियों का क्रीडा-कंदुक बना हुआ होगा | ... इसलिए उचित यही है कि राज्य धूत गृह और मदिरालय खोलने की अनुमति न दे | न ये स्थान होंगे न प्रजाजन का विवेक नष्ट होगा|"[६] यहाँ यह विवाद सामूहिक होता है कि मदिरालय और धूत गृह राज्य की आय के लिए बड़े स्त्रोत हैं | यहाँ बाजारवाद की मानसिकता आड़े आ जाती है | राज्य स्वयं की आय और समृद्धि तो चाहता है पर मनुष्य की सद्वृतियों को यदि उसके लिए मूल्य चुकाना पड़े तो कोई ऐतराज़ नहीं | कैसा है यह आज का यथार्थ ! बिहार राज्य का मदिरा निषेध और उसका असर सबके समक्ष है |

साहित्य के अनुसार मनुष्य प्रकृति के अनुपम विस्तार का एक छोटा सा हिस्सा है |... साहित्य में बसंत का आना जैसे एक नया प्रारम्भ होता है | साहित्य में कितनी ही रचनाएँ बसंत के आगमन और स्वागत पर लिखी गयी हैं | .... दार्शनिक मान्यता यह है कि हमारा जीवन सफलता-असफलता, उपलब्धि-अभाव, उत्थान-पतन,हर्ष-विषाद, पाप-पुण्य आदि के धागों से बुना वस्त्र है | ... जो विकास के रूप में बाहर दीखता है वह विश्वास के रूप में पहले मानसिकता में घटित होता है | .. प्राचीन भारत में बसंत को मदन-उत्सव की उपाधि से विभूषित किया जाता था | समय बदला | जो प्रवृतियाँ थी वे धीरे धीरे वर्जनाओं में बदलती गयी ... मनुष्य आज भी वही है क्योंकि किसी न किसी रूप में मदनौत्सव जारी है | केवल उसकी शुचिता और मर्यादा विलुप्त हो गयी है | .. "किसी न किसी रूप में हम प्रकृति का स्वागत तो करते हैं ..लेकिन देख सकतें हैं- स्वागत पर बाज़ार हावी है | जब प्रदर्शन बढ़ने लगे तब मानना चाहिए कि दर्शन का महत्त्व कम हो रहा है | आज बाज़ार ने हर पर्व, त्यौहार, उल्लास को जैसे अपने नियंत्रण में ले लिया है | आज यह कल्पना करना कठिन है कि एक छोटा सा फूल लेकर कोई बसंत का सन्देश अपने प्रिय को दे सकता है | इसके लिए बाज़ार ने पूरा 'पैकेज' बना रखा है | इस पैकेज को न मानना, जैसे आधुनिकता की दौर में पिछड़ जाना है |"[७]

साहित्य के बारे में एक और अफसोसजनक तथ्य है कि आज की पीड़ी ज्यादा पढती नहीं | अध्ययन और अध्यापन में निरंतर कमी आती जा रही है | आज बच्चे कौन सी वस्तु कहाँ से ले, इसका परामर्श तो माता-पिता को देते हैं, किन्तु कौन सा साहित्य पढ़ें ? न तो इसका कोई विज्ञापन है, न उन्हें पता है, न ही कोई जरिया है, जो उन्हें इसकी जानकारी दे सके | धुआंधार प्रचार माध्यम के रहते यदि 'हैरी पॉटर' जैसी किताब का प्रचार हो सकता है तो हम अपने साहित्य की ऐसे व्यवस्था क्यों नहीं कर सकते ?

"आज साहित्यकारों के समक्ष यह चुनौतो है कि वह ऐसा सहिय रचें जिसके प्रति आज की पीढ़ी का रुझान उत्पन्न हो | याद रखना होगा उसका सामना एक खतरनाक वैश्विक बाजारवाद से है जिसके पास अकूत धन है , जो

आपकी अस्मिता को छीन सकता है , अपनी विचाधारा को आपपर थोप कर सफल हो सकता है | हाथ पर हाथ रखकर बैठने से स्थिति गंभीर हो सकती है | अत: अच्छा मनोव्ज्ञानिक साहित्य रचें , मानसिक भूख के अनुसार पठन-सामग्री रचें और उसे प्रोत्साहित करें |"[8]

उपसंहार : Conclusion :

अंतत: कह सकते है कि वर्तमान बाज़ारवाद की दुविधा के काल में हम रह रहे हैं | चूँकि आज आधुनिक सोशल मीडिया और संचार माध्यमों की विकसित अवस्थाओं ने विश्व को एक गावं के रूप में परिवर्तित कर दिया है | इसलिए संस्कृतियों का नज़दीक आना लाजिमी ही है | ऐसे में कभी-कभी टकराहट की स्थितियां भी उत्पन्न हो जाती हैं | और एक दूजे को कमतर दिखाने की भावना भी जोर पकड़ लेती है | "इसके अलावा बाजारू संस्कृति के एकछत्र प्रसार से दुनिया के अधिकांश देशों में सार्थक सांस्कृतिक जीवन का लोप होने का भय है | प्रशन यह है कि इस से मुक्ति कैसे मिले ? स्पष्ट है कि बाजारवादी संस्कृति का निर्बंध फैलाव समस्या का समाधान नही हो सकता | बल्कि समस्या का समाधान इसी में हो सकता है कि मूल्यों की विविधता के बीच कुछ ऐसे मूल्यों की तलाश हो जो विविधता के बावजूद भी विभिन्न मानव समूहों और उनकी संस्कृतियों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को स्थापित करने की तलाश का प्रयास हों |

सन्दर्भ सूची: References:

1. कबीरदास,कबीर वाणी
2. नरेंद्र कोहली, महासमर-खंड-६,प्रच्छन्न-पृष्ठ, ५१
3. शैलेन्द्र, फिल्म-दिल एक मंदिर
4. अमिताभ भट्टाचार्य, फिल्म-ए दिल है मुश्किल
5. इरशाद कामिल, फिल्म-सुल्तान
6. नरेंद्र कोहली,महासमर-खंड-३,कर्म-पृष्ट २०
7. सत्यव्रत, समकालीन साहित्य समाचार पत्रिका, फरवरी २०१७ अंक,पृष्ठ-४
8. (www.jansatta.com>article January -29,2017)